P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking An Analisation
Title Code:UPBIL04788
Vol-I * Issue- VI* July - 2016

समकालीन भारतीय समाज में प्रजातन्त्र और पूँजीवाद

कुलदीप कुमार
शोधार्थी,
समाजशास्त्र विभाग
लखनऊ यूनिवर्सिटी,
लखनऊ

भाग्यप्रीत कौर
शोधार्थी,
गृह विज्ञान विभाग,
लखनऊ यूनिवर्सिटी,
लखनऊ

सारांश

दुनियाँ के पिछले दो सौ सालों के इतिहास का यह स्पष्ट निर्णय है कि पहली नजर में यह बात अजीब सी लगती है कि राजनीतिक दाँव पेचों की वजह से लाचार हुई लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं ने उपलब्धियों के लगभग हर मानदण्ड पर तानाशाहियों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। वहीं दूसरी ओर जनतांत्रिक देश धीमी गति से ही सही लेकिन मजबूती के साथ आगे बढ़ रहे हैं। मानवीय विकास के कई संकेतांकों को सुधारने के लिए विशेष प्रयास करने और भारतीय प्रजातंत्र के आधार को और अधिक मजबूत बनाने के लिए प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : लोकतंत्र, जनतंत्र, पूँजीहित और जनहित

प्रस्तावना

भारतीय संविधान एक आदर्श राजनीतिक वातावरण में सन 1950 को लागू हुआ था । जिसमें संसद और उसके अंगों के निर्माण में प्रतिनिधित्व प्रणाली को अपनाया गया था। प्रजातंत्र एक ऐसी प्रणाली है जिसमें जनता द्वारा और जनता के लिए शासन होता है। लोकतंत्र प्रणाली का सबसे अच्छी प्रणाली इसलिए माना जाता है। क्योंकि इसका कोई विकल्प मौजूद नही है। शासन की वर्तमान प्रणालियों में इसकी श्रेष्ठता बरकरार है। हालांकि यह बात उन देशों के लिए सच साबित होती है। जहाँ पर प्रणाली के सभी मानकों को वास्तविक रूप से अपनाया गया और लागू किया जाता है।

दुनियाँ के पिछले दो सौ सालों के इतिहास का यह स्पष्ट निर्णय है कि पहली नजर में यह बात अजीब सी लगती है कि राजनीतिक दाँव पेचों की वजह से लाचार हुई लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं ने उपलब्धियों के लगभग हर मानदण्ड पर तानाशाहियों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। वहीं दूसरी ओर जनतांत्रिक देश धीमी गति से ही सही लेकिन मजबूती के साथ आगे बढ़ रहे हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर लोकतंत्र में ऐसा क्या है जो उसे राजतंत्र, धर्मतंत्र, कुलीनतंत्र, सैनिक तंत्र और साम्यवादी अधिनायक तंत्रो को हर तरह से सफल साबित करता है इसका एक व्यवहारिक पहलू भी है कि लोकतंत्र की कई समस्याओं की वजह से गम्भीर नागरिक इतने हताश हो जाते है कि उनकी लोकतंत्र के प्रति उनमें अरूचि उत्पन्न हो जाती है।

परन्तु वर्तमान समय में लोकतंत्र लोगों के हित के लिए भारतीय अर्थ व्यवस्था के द्वारा उदारीकरण, भूमंडलीकरण और निजीकरण के लिये खोल देने से धीरे–धीरे राज्य की भूमिका को सीमित कर दिया, जिससे उत्पीड़ित जनता और सदियों से वंचित शोषित समुदाय के लोग पूरी तरह हाशिये पर पहुँचने से लोगों के मुद्दे और जनता की आवाजे गायब हो गई। एक तरफ वैश्विक पूँजी ने व्यक्ति समृद्धि को बढ़ाया और वही दूसरी ओर आम भारतीयों को दरिद्रता की ओर अग्रसर किया।

आज हमारे देश के अन्दर ही दो देशों का निर्माण हो रहा है। एक तरफ वैश्विक समृद्धि के कारण उच्च वर्ग के राजनीतिक लोग है वही दूसरी ओर दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक और महिलाएँ कथित विकास की मुख्य धारा से वंचित है। प्रायः यह देखा गया है कि जब संसार को पूँजीवाद के हित में कानून बनाने होते है कुछ ही मिनटों में सभी के द्वारा बना दिये जाते हैं। कुछ ही मिनटों में सभी के द्वारा बना दिये जाते हैं। परन्तु जब यही बात देश की आधी आबादी के लिए व शोषितों की बात आती है तो उनके पेंच फंसाकर उनको लटका दिया जाता है ।

देश की आधी आबादी के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए भागीदारी वाले महिला आरक्षण विधेयक का अटका रह जाना इसी दुर्भाग्य की ओर इशारा करता है वही दूसरी ओर जन आदोलन जिसे राजनीति की अर्न्तआत्मा कहा जाता है लोकतंत्र को मजबूत करने में अहम भूमिका अदा

P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking An Analisation
Title Code:UPBIL04788
Vol-I * Issue- VI* July - 2016

की है मगर सरकारें अपने ही नागरिकों का दमन कर रही हैं ऐसे मे हमारे लोकतंत्र और नागरिक स्वतंन्त्रता की निरन्तरता धीरे–धीर सीमित होती जा रही है।

इस समय वर्तमान में जो कुछ चल रहा है। उसे देखकर प्रजातांत्रिक व्यवस्था के औचित्य और उपयोगिता पर सवाल उठना स्वभाविक है। जिस प्रजातांत्रिक व्यवस्था की नींव 19वीं शताब्दी में पड़ी थी वह 20वीं शताब्दी में मूल्यों के रूप में विकसित होकर रह गयी और 21वीं शताब्दी आते–आते इस पर प्रश्न चिन्ह लगने लगे। हाल के दिनों में भारतीय प्रजातांत्रिक संस्थाओं में लोगों का विश्वास कम होता जा रहा है। संसद और राजनीति की तुलना में उनका विश्वास न्यायालय और नागरिक समाज की संस्था के प्रति बढ़ रहा है। इनका इन संस्थाओं के पति बढ़ता विश्वास ही इस बात का प्रतोक है।हालांकि इस तथ्य का एक दूसरा पहलू भी है कि समाज के इन दबे व शोषित लोग आज अपने सम्मान के लिए प्रजातंत्र को ही एक मात्र सहारा मानते है। परन्तु समस्या यह है कि प्रजातंत्र के सपनों को साकार करने वाली राजनीतिक संस्थाओं की क्षमता कम हा रही है। 19वीं सदी के प्रतिनिधित्व का क्रान्तिकारी माडल अब बेकार हो चला है इसमें नये प्रयोगों की आवश्यकता उत्पन्न हो रही है।

प्रजातांत्रिक संस्थाओं के आधुनिक स्वरूप के अप्रासंगिकता के कई कारण हो सकते है। जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण प्रजातंत्र और पूँजीवाद के बीच बढती हुई खायी है। प्रजातंत्र का उद्देश्य जनहित और पूँजीवाद को पूंजीपतियों का हित साधना रहता है। पूंजीवादी तंत्र की विडम्बना यह है कि इसे जनहित में बताते हुए लेते है।

इसी के कारण बुजुर्ग लोग अक्सर कहते मिल जातें हैं कि, इससे अच्छी तो अग्रेजों को हुकूमत थी। लोकतंत्र की कुछ ऐसी ही कमजोरी के कारण ही कुछ ऐसे आन्दोलनों और संगठनों को शक्ति प्रदान करते हैं जो लोकतंत्र की हत्या करना चाहते हैं। यह सही समय है जब हम इस खतरे की घण्टी को सुनें और इससे निपटने का रास्ता ढूढें। सच्चाई यह है कि लोकतंत्र का विकल्प और अधिक लोकतंत्र हो सकता है।

उद्देश्य

भारतीय समाज के सन्दर्भ में प्रजातन्त्र के महत्त्व की व्याख्या करना है ।

निष्कर्ष

आज के नव उदारवादी आर्थिक युग में पूँजीहित और जनहित के बीच सामंजस्य बैठाना मुश्किल होता जा रहा है। हमारे नीति–निर्माताओं ने संविधान में जिन नीति–निर्देशक तत्वों को शामिल कर इस बात पर जोर दिया था कि देश में आर्थिक असमानता उत्पन्न न हो, ऐसा नही है कि इसका नाकारात्मक प्रभाव रहा हो इसका साकारात्मक प्रभाव भी है और वह यह है कि भारतीय जन मानस अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुए ह और अपने अधिकारो को पहचानने लगे है जिसका प्रभाव आन्दोलन के रूप में समय–समय पर देखने को मिलता है।

ऐसे में आर्थिक पिछड़ेपन को समाप्त करने पर विशेष जोर देना होगा। सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है कि मानवीय विकास के कई संकेतांकों को सुधारने के लिए विशेष प्रयास करें और भारतीय प्रजातंत्र के आधार को और अधिक मजबूत बनाने के लिए और अधिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। बढ़ती आर्थिक असमानता की समस्या का सामना व्यवस्था को और अधिक प्रजातांत्रिक बनाकर ही किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Collier, P. 2007, The Bottom Billion: Why the Poorest Countries are Failing and What Can Be Done About It, Oxford University Press, New York.
2. Picketty, T. 2014, Capital in the Twenty First Century, Harvard University Press, Cambridge.
3. Keane, J. 2009, The Life and Death of Democracy, Simon & Schuster, London.
4. B.B. Mishra, The Indian Middle Class, Delhi, Oxford University Press, 1961, 304.
5. Sanjay Joshi, The Middle Class in Colonial India, New Delhi, Oxford University Press, 2011, 91.
6. Developmental state implies state-led macro-economic planning for socio-economic development of the country.
7. Schumpeter, J. 1942, Capitalism, Socialism and Democracy, Harper and Brothers, New York. 5th edition, 1976, George Allen and Unwin, London.
8. Skidelsky, R. and Skidelsky, E. 2012, How Much is Enough?: Money and the Good Life, Other Press, New York. St.S